चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन
(असम के विशेष संदर्भ में)

पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

प्रियंका दास

Registration No. : TZ167676 of 2016

मानविकी एवं समाज विज्ञान विद्यापीठ

हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय

तेजपुर, असम : 784028

जुलाई : 2023

समाहार

समाहार

भाषा एक सामाजिक उत्पत्ति है। यह किसी व्यक्ति को समाज से जोड़कर उसकी सामाजिक अस्मिता को प्रकट करती है। सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में व्यक्ति न केवल शब्दों के विशेष अर्थ को आत्मसात करता है वरन् समय और परिस्थिति के अनुकूल वह नये शब्द भी गढ़ता है। इस तरह से व्यक्ति के सामाजिक परिष्कार में भाषा एक अपरिहार्य उपकरण है। व्यक्ति अपने परिवेश से अनुभव लेकर गीत, कथा, नाटक, सुभाषित आदि विधाओं के माध्यम से भाषाई अभिव्यक्ति करता है। इससे साहित्य समृद्ध होता है और कालांतर में दूसरे परिवेश अथवा समाज के संस्पर्श से उसमें काफी हद तक परिवर्तन और परिवर्द्धन होता है। अर्थात् सामान्य लोक की अभिव्यक्ति के विस्तार से एक ऐसे साहित्य का प्रादुर्भाव होता है जो स्थानीयता का वहन करते हुए दीर्घ काल तक स्पंदित होता है। ऐसी स्थिति में लोक सामान्य न रहकर विशिष्ट हो जाता है और लोक द्वारा रचित साहित्य जीवन को नवीन दृष्टि देने के साथ ही नैतिक उत्थान और सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों के आधान को दिशा देता है। इसी तरह पूर्वोत्तर भारत में स्थित असम राज्य में लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व ऐसी विशिष्ट संस्कृति और साहित्य का प्राकट्य हुआ जो विभिन्न संस्कृतियों के संलयन से निर्मित एक सम्मिलित समाज का प्रतिनिधित्व करती है। असम में 'चाय जनगोष्ठी' कहलाने वाले श्रमिक समाज में विभिन्न संस्कृतियों के संक्रमण और तमाम तब्दीलियों के बावजूद इनकी संस्कृति और साहित्य में स्थानीयता की खुशबू के साथ ही असम की आब-ओ-हवा का भी मिश्रण है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में चाय जनगोष्ठी की विशिष्ट संस्कृति और साहित्य को समझने का प्रयास किया गया है। यह शोध-प्रबंध प्रमुख रूप से चाय जनगोष्ठी में पीढ़ियों से प्रचलित लोक साहित्य की भाषा के समाज संदर्भित अध्ययन और विश्लेषण पर एकाग्र है। इसमें वर्तमान संदर्भों में चाय जनगोष्ठी के लोक साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों की पड़ताल भी की गयी है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध कुल छह अध्यायों में विभाजित है जिनकी उपलब्धियाँ और निष्कर्ष क्रमवार रूप में इस प्रकार हैं-

शोध-प्रबंध का प्रथम अध्याय **'समाजभाषाविज्ञान: अवधारणा एवं संकल्पनाएँ'** पर केंद्रित है। इस अध्याय में भाषा और समाज के परस्पर अंतरंग संबंधों पर विस्तार से विचार किया गया है। दरअसल, भाषा समाज में उपजती है और समाज में ही प्रयुक्त होती है। चूंकि कोई भी समाज विभिन्न स्तरों में विभाजित होता है इसीलिए सामाजिक विभेद का प्रभाव भाषाई व्यवहार में सहज ही देखा जा सकता है। अर्थात् भाषाई प्रयोग

से व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, आयु, शिक्षा आदि का अनुमान लगाया जा सकता है। व्यक्ति सामाजिक परिस्थिति के अनुसार जिन भूमिकाओं का निर्वहन करता है उसी के अनुरूप वह भाषा का व्यवहार करता है। इस तरह भाषा समाज के अनुरूप अलग-अलग रूपों में प्रयुक्त होती है और समाज भी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति पाता है। यानी भाषा और समाज की परिकल्पना एक-दूसरे से इतर नहीं की जा सकती है। समाजभाषाविज्ञान भाषा और समाज के इसी अभेद संबंध को वृहत्तर संदर्भों में तलाशता है। समाजभाषाविज्ञान में संप्रेषण के दौरान इस बात पर ग़ौर किया किया जाता है कि कौन, कब, किससे, कहाँ, क्या और किस संदर्भ में बात कर रहा है या रही है। यानी समाजभाषाविज्ञान भाषा व्यवहार के सामाजिक संदर्भों पर विचार करता है। इस अध्याय में समाजभाषाविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को बताते हुए उसकी परिभाषा तथा स्वरूप पर चर्चा की गयी है। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक घटकों के प्रभावस्वरूप भाषाई व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों को सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। एक ही संदर्भ में अलग-अलग भाषा प्रयोक्ता भिन्न तरीके से किसी बात को अभिव्यक्त करते हैं। ऐसी परिस्थिति में समाजभाषाविज्ञान भाषाई विकल्पन को अध्ययन का आधार बनाता है और संप्रेषण में वैकल्पिक वाक्-चयन के कारणों की पड़ताल करता है। ध्यातव्य है कि संप्रेषण में भाषा जिन परिवर्तनों से होकर गुजरती है उसके कुछ प्रकार्यात्मक संदर्भ उभरकर आते हैं। इसीलिए समाजभाषाविज्ञान में भाषा के समाज संदर्भित व्यवहार के अध्ययन हेतु कुछ संकल्पनाएँ मौजूद हैं। उक्त अध्याय में भाषिक विकल्पनों के अध्ययन-विश्लेषण हेतु कोड-मिश्रण, कोड-अंतरण, भाषाद्वैत, द्विभाषिकता, बहुभाषिकता, भाषा-अनुरक्षण, भाषा-विस्थापन, भाषा-मृत्यु, प्रोक्ति, प्रयुक्ति, पुनरुक्ति आदि संकल्पनाओं को सोदाहरण विश्लेषित किया गया है। इन्हीं आधारों पर समाज के नैतिक-सांस्कृतिक मूल्यों के अतिरिक्त वक्ता-श्रोता की सामाजिक प्रस्थितियों तथा संबंधों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसी क्रम में समाजभाषाविज्ञान और भाषाविज्ञान के आधारगत पार्थक्य को भी रेखांकित किया गया है।

शोध-प्रबंध के द्वितीय अध्याय का विवेच्य है **'लोक साहित्य: स्वरूप, क्षेत्र एवं विविध विधाएँ'**। इस अध्याय में लोक तथा लोक साहित्य के अवधारणात्मक स्वरूप को सविस्तार विवेचित किया गया है। इस अध्याय के निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि लोक की व्यापकता इतनी विस्तृत है कि इसमें समूचा ब्रह्मांड समाहित है। लोक अपने वर्तमान में भी परंपरागत रीतियों और मान्यताओं का अनुसरण कर सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति का संवहन करता है। लोक की स्थानीयता तथा उसका देशज, सहज स्फूर्त रूप ही उसकी विलक्षणता का आधार है किन्तु इन सबके बीच लोक की रूढ़ियों, अंध परंपराओं और विद्रूपताओं को

नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। जहाँ एक ओर लोक नदी के निर्मल प्रवाह की भाँति सतत गतिशील है वहीं दूसरी ओर धर्म को लेकर लोक में इतनी सख़्ती है कि किसी भी तरह का बाहरी हस्तक्षेप इसमें ग्राह्य नहीं है। इसी कारण सामान्य लोक और शिष्ट लोक के रूप में समाज में अंतर्विरोध की स्थिति दिखायी देती है। परन्तु हमें यह समझना होगा कि लोक और शास्त्र में भेद के बावजूद ये एक-दूसरे से संबद्ध हैं। इसी अध्याय के परवर्ती उप-अध्यायों में लोक साहित्य को व्याख्यायित करते हुए उसकी प्रमुख विधाओं पर सविस्तार चर्चा की गयी है। इसमें यह बताया गया है कि लोक द्वारा सृजित और प्रचलित साहित्य में प्रेम, संवेदना, सहानुभूति, भाईचारा, उदारता, करुणा और सहिष्णुता जैसे मानवतावादी भावों और विचारों का उत्कर्ष होता है। लोक साहित्य में सामान्य जनमानस की आशा-आकांक्षा, कुंठा, हताशा, हर्ष, परंपराओं, मान्यताओं तथा विश्वासों से प्राप्त अनुभवों की यथार्थपरक सामूहिक अभिव्यक्ति होती है। लोक द्वारा सृजित साहित्य में अभिव्यक्ति की कई धाराएँ प्रचलित हैं। कतिपय विद्वानों ने इसे विभिन्न भागों में वर्गीकृत किया है, यथा- लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा, लोक नाट्य तथा लोक सुभाषित। उक्त अध्याय के अंतिम उप-अध्याय में इन सभी विधाओं के सैद्धांतिक पक्ष को सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। कुलमिलाकर यह कहा जा सकता है कि लोक जीवन के यथार्थ और अनुभवों को उपजीव्य बनाकर अपनी विवेकशीलता के आधार पर देशज बिंबों से जीवंत, सहज-स्फूर्त साहित्य का सृजन करता है।

तृतीय अध्याय में चाय जनगोष्ठी के इतिहास, चाय श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति के अतिरिक्त उनके भाषाई समाज को समग्रता से उद्घाटित किया गया है। इस अध्याय का शीर्षक है **'चाय जनगोष्ठी: परिचय एवं इतिहास'**। सर्वविदित है कि भारतीय चाय उत्पादन में असम शीर्षस्थ पंक्तियों में गिना जाने वाला राज्य है। इसीलिए असम में चाय की पत्तियों को 'कच्चा सोना' कहा जाता है। सन् 1839 ई० में असम में जब पहली बार चाय उद्योग की स्थापना हुई तो उसके बाद ब्रिटिश सरकार ने चाय के माँग की आपूर्ति हेतु दूसरे राज्यों से श्रमिकों को लाना प्रारंभ किया। वर्तमान समय में असम की चाय जनगोष्ठी भारत के विभिन्न राज्यों से लाये गये भिन्न भाषा और संस्कृति के लोगों का समाज है। इस समाज में लगभग सौ से भी अधिक आदिवासी तथा अन्य जातीय समुदायों के लोग हैं जो अपनी पृथक संस्कृति और भाषा के बावजूद असम में एकत्रित होकर सामाजिक एकता और समरसता कायम किये हुए हैं तथा अपनी एक अलग एवं विशिष्ट पहचान बनाये हुए हैं। इसके साथ ही उक्त अध्याय में चाय श्रमिकों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को प्रारंभ से लेकर आज तक विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है। सारतः हम यह कह सकते हैं

कि इस समाज में शिक्षितों की तुलना में अशिक्षित तथा अल्पशिक्षित लोगों की संख्या अधिक है। इसीलिए इनमें जागरूकता की कमी है। खासतौर पर प्राक्तन चाह मजदूरों के बनिस्पत बागानों से जुड़े चाय मजदूर आज भी अशिक्षित हैं। इन चाय श्रमिकों की नयी पीढ़ी के अधिकतर बच्चे बीच में ही शिक्षा को अधूरा छोड़ बागानों में अथवा किसी अन्य पेशे से जुड़ने लगते हैं। इन श्रमिकों की अत्यंत दयनीय आर्थिक स्थिति इसका एक प्रमुख कारण है। साथ ही, आज भी इस समाज के कुछ लोगों में हीनताबोध के साथ ही यह धारणा भी व्याप्त है कि चाय बागानों में श्रम करना ही इनकी नियति है। इसके अलावा चाय जनगोष्ठी के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु समय-समय पर आने वाली सरकारी नीतियों और योजनाओं से यह समाज अनभिज्ञ रह जाता है। यहाँ तक कि सरकारी आला-अफसर भी इनका यथोचित लाभ उठाते हैं। चाय जनगोष्ठी के सामाजिक-आर्थिक उन्नति में प्लांटेशन लेबर ऐक्ट (1951), असम चाय श्रमिक कल्याण परिषद, टी बोर्ड ऑफ़ इंडिया, बोनस अधिनियम आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इससे चाय उद्योग प्रबंधन का पूर्ण नियंत्रण बहुत हद तक समाप्त हुआ है। इसी क्रम में चाय श्रमिकों की राजनीति में भागीदारी को रेखांकित करते हुए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में श्रमिक संगठनों की सहभागिता का सविस्तार उल्लेख किया गया है। वर्तमान परिदृश्य में भी राज्य एवं केंद्र स्तर पर चाय जनगोष्ठी की प्रतिभागिता और सक्रियता पर बात की गयी है। इसके अलावा यह भी बताया गया है कि भाषाई दृष्टि से चाय जनगोष्ठी एक मिश्रित समाज है। हम देखते हैं कि चाय श्रमिकों ने असम आकर आपसी संवाद हेतु विभिन्न भाषाओं की शब्दावली से युक्त एक सम्मिश्रित भाषा का प्रयोग प्रारंभ किया जिसे असमिया भाषा से प्रभावित 'सादरी' कहा जाता है। सादरी का यह रूप वर्तमान समय में चाय जनगोष्ठी की पाँचवी-छठी पीढ़ी की मातृभाषा है। इसके अलावा ऑस्ट्रोएशियाटिक, द्रविड़ तथा आर्य भाषा परिवार की कुछ भाषाओं का भी चाय जनगोष्ठी में प्रचलन है। इस अध्याय में चाय जनगोष्ठी के कुछ प्रमुख जातीय समुदायों तथा उनके द्वारा व्यवहृत भाषा का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। विशेषकर 'बागानिया भाषा' अर्थात् 'असमिया सादरी' को ध्वनि प्रकृति, भाव प्रकृति और मूल शब्द भंडार के स्तर पर उदाहरण सहित विश्लेषित किया गया है।

शोध-प्रबंध का चतुर्थ अध्याय प्रमुख रूप से चाय जनगोष्ठी की संस्कृति को समर्पित है जिसका शीर्षक है- **'चाय जनगोष्ठी की संस्कृति एवं संस्कार'**। इस अध्याय में चाय जनगोष्ठी के दैनिक क्रियाकलापों, तौर-तरीकों, विभिन्न सांस्कृतिक अनुष्ठानों, मान्यताओं, विश्वासों पर विस्तृत चर्चा की गयी है। चाय श्रमिकों के सांस्कृतिक जीवन पर केंद्रित इस अध्याय के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि तमाम विषम

परिस्थितियों के बावजूद चाय श्रमिकों में अदम्य साहस, उत्साह, जिजीविषा विद्यमान है तथा कर्म को लेकर अद्भुत प्रतिबद्धता है। जीवन की तमाम विसंगतियों के बावजूद ये श्रमिकजन साल भर विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों में अत्यंत सक्रिय रहते हैं। इस समाज में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्व-त्योहारों जैसे- टूचु पर्व, करम पूजा, साँहराई पूजा, मंगला पूजा, चारूल पूजा, दुर्गा पूजा, ग्राम पूजा आदि में अलग-अलग धार्मिक कर्मकांड तथा रीतियों का अनुसरण कर ईश्वर से परिवार और समाज-कल्याण की कामना की जाती है। चाय जनगोष्ठी में हिंदू धर्म के अलावा इस्लाम और ईसाई धर्म के अनुयायी भी हैं जो अपने धर्म के अनुरूप आचार-व्यवहार व नियमों का पालन करते हैं। इसके साथ ही इस अध्याय में चाय जनगोष्ठी के विभिन्न संस्कारों यथा- छटि (छठी), अन्नप्राशन, कर्णवेधन, छोटो शादी, विवाह, अंत्येष्टि आदि का भी उल्लेख किया गया है। कुलमिलाकर यह कहा जा सकता है कि चाय जनगोष्ठी में प्रचलित नाना पर्व-त्योहारों और संस्कारगत अनुष्ठानों में जाति के अनुरूप विधि-विधानों में कमोबेश भिन्नताओं के साथ विभिन्न लोक मान्यताएँ और विश्वास प्रचलित हैं जो वस्तुतः इस समाज में शकुन-अपशकुन, मंगल-अमंगल के निर्णायक माने जाते हैं। इसके साथ ही चाय श्रमिक समाज की समृद्ध लोक कलाओं का भी उल्लेख किया गया है। लोक कलाएँ, लोक संस्कृति का एक महत्वपूर्ण उपांग हैं जिनके जरिये किसी समाज के सौंदर्यबोध और कलात्मकता को हम जान सकते हैं। चाय जनगोष्ठी के कुम्हार, लोहार, बुनकर, बढ़ई, हालधीया कंध आदि जाति के लोग बागानों में काम करने के अलावा जाति के अनुसार समाज द्वारा निर्धारित पेशे से भी जुड़े होते हैं। इस समाज में वास्तु कला, शिल्पकला, काष्ठकला, चित्रकला, नृत्यकला आदि के उत्कृष्ट नमूने प्रचलित हैं जो इस श्रमिक समुदाय के बौद्धिक तथा कलात्मक सृजन के प्रतिमान हैं। वर्तमान समय में इनमें से कुछ कलाएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं। अतः इनका संरक्षण अत्यावश्यक है। यह शोध-कार्य इसी संदर्भ में एक बौद्धिक प्रयास है।

पंचम अध्याय चाय जनगोष्ठी में प्रचलित लोक साहित्य की गीतात्मक विधाओं पर एकाग्र है जिसका शीर्षक है **'चाय जनगोष्ठी के गेय लोक साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन'**। इस अध्याय के अंतर्गत चयनित लोकगीतों, लोक सुभाषितों तथा मंत्र साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण-विवेचन किया गया है। लोकगीतों के अंतर्गत संस्कार, ऋतु, व्रत, जाति, श्रम आदि विविध विषयक गीतों के सामाजिक अर्थों को उद्घाटित किया गया है तथा भाषिक वैशिष्ट्य का समाज सापेक्ष विश्लेषण किया गया है। इसी क्रम में लोकोक्तियों, पहेलियों, मुहावरों, बाल गीतों के साथ ही झाड़-फूँक, टोना-टोटका से संबंधित मंत्रों आदि की सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थ छायाओं को प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय के निष्कर्ष के तौर पर

यह कहा जा सकता है कि चाय जनगोष्ठी में प्रचलित गेय साहित्य की विषयवस्तु में इस समाज की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियों का सटीक चित्रण प्रस्तुत हुआ है। विशेषकर लोकगीतों की बात की जाए तो इनमें कुछ असम की पृष्ठभूमि से संबंधित हैं, जिनके आधार पर चाय श्रमिकों के असम आने की स्थिति तथा उनके साथ हुए शोषण और अत्याचार का बोध होता है। इसी तरह से लोक सुभाषितों के माध्यम से चाय श्रमिकों के सामान्य ज्ञान के विस्तार, वाक्-कौशल और बुद्धि-प्रवीणता का पता चलता है तथा मंत्रों के अत्यधिक प्रचलन को देखकर इस समाज में व्याप्त अंधविश्वास की पुष्टि होती है। खासकर इन मंत्रों में 'कामख्या' देवी का जिक्र होना कहीं न कहीं असम में पौराणिक समय में प्रचलित तंत्र-साधना के प्रभाव को दर्शाता है। वैसे लोकगाथा लोक साहित्य की एक प्रमुख विधा है। इसमें कथा को ही गीत के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। किन्तु क्षेत्र-सर्वेक्षण के दौरान चाय जनगोष्ठी समाज में लोकगाथा से संबंधित तथ्य उपलब्ध नहीं हो पाएँ। इसीलिए इस अध्याय में लोकगाथा को शामिल नहीं किया गया है।

शोध-प्रबंध का अंतिम अध्याय **'चाय जनगोष्ठी के कथात्मक लोक साहित्य का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन'** पर केंद्रित है। इस अध्याय में चाय जनगोष्ठी में प्रचलित मिथकीय, सामाजिक, व्रत संबंधी, उपदेशात्मक लोककथाओं के अतिरिक्त 'ललिता-सबर पाला' लोक नाट्य का समाजभाषाविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन-विश्लेषण किया गया है। खासकर लोककथाओं की बात करें तो इनमें पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों के माध्यम से मानव जीवन के विविध प्रसंगों को उकेरने का प्रयास किया गया है। इन कथाओं में मनुष्य के नैतिक उत्थान पर विशेष बल दिया गया है। लोककथाओं के अंत में 'हामर काह्नि सिराई गेल, ढेकिया साग बुढ़ाई गेल' जैसी उक्ति कही जाती है जो कथा के माध्यम से प्रेषित उपदेश को आत्मसात कर चारित्रिक उत्थान और परिपक्वता की ओर इंगित करता है। इसके साथ ही इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान दौर में चाय जनगोष्ठी में प्रचलित लोक नाट्य लगभग विस्मृत हो चुके हैं, कुछ तो केवल नामोल्लेख तक ही सीमित हैं। अतः उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल से आये श्रमिकों में प्रचलित 'ललिता-सबर पाला' नाट्य का उल्लेख विशेष रूप से इस अध्याय में किया गया है। इस लोक नाट्य में आर्य और अनार्य संस्कृति के बीच की टकराहट, आदिवासी संस्कृति में आर्यों के हस्तक्षेप तथा ईश्वरीय भक्ति और सेवा में वर्चस्ववाद व रूढ़िवादी परंपरा को अत्यंत साफगोई से प्रस्तुत किया गया है।

कुलमिलाकर पंचम और षष्ठम अध्याय शोध-प्रबंध के व्यावहारिक पक्ष पर आधारित हैं। इनमें चाय जनगोष्ठी में लिखित तथा वाचिक रूप में मौजूद लोक साहित्य का समाजभाषिक दृष्टि से विश्लेषण किया गया

है। इन दोनों अध्यायों की औसत उपलब्धि के रूप में यह कहा जा सकता है कि इस समाज में विभिन्न जातीय समुदायों के मिश्रण के कारण इनकी भाषा भी मिश्रित हुई है। इनके लोक साहित्य की भाषा में संस्कृत, हिंदी, बांग्ला, उड़िया, भोजपुरी आदि के प्रयोग से कोड-मिश्रण, कोड-अंतरण, कोड-बॉरोइंग तथा बहुभाषिकता के साथ ही भाषाई विकल्पन की विशेषता सहज दृष्टव्य है। इसके साथ ही भाषा के निम्न कोड के शब्दों का भी आधिकाधिक प्रयोग हुआ है जिससे प्रमुख रूप से इस समाज की देशज संस्कृति तथा चाय जनगोष्ठी के अशिक्षित व अल्पशिक्षित होने का बोध होता है। इस समाज के लोक साहित्य की भाषा में लयात्मकता, तुकबंदी अथवा किसी विशेष शब्द पर बल देने हेतु सामान्य वाक्य-संरचना में शब्दों के निर्धारित स्थान में परिवर्तन देखा जा सकता है जो समाजभाषिक दृष्टि से टॉपिकीकरण की प्रवृत्ति के रूप में जानी जाती है। इसके अलावा भाषिक पुनरुक्तियों और विभिन्न क्षेत्रों की प्रयुक्तियों का यथास्थान प्रयोग चाय श्रमिक समाज के समृद्ध शब्द-भंडार का सूचक है। इस समाज में प्रचलित गीतों, कथाओं तथा सुभाषितों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग असल में भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रभाव को दर्शाता है। इसके साथ ही असमिया परिवेश और संस्कृति के संस्पर्श में आकर चाय जनगोष्ठी की भाषा में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा है। चाय जनगोष्ठी के लगभग सभी लोग दैनिक कामकाज में लंबे समय से असमिया भाषा का ही प्रयोग करते आ रहे हैं। इसी कारण इनके लोक साहित्य में असमिया भाषा के शब्दों का प्रयोग भी अधिक देखने को मिलता है। असमिया भाषा के प्रभाववश चाय जनगोष्ठी की भाषा ओकारांत और योगात्मक हो गयी है। अतः यह कहना गलत न होगा कि असम लाये जाने के बाद चाय श्रमिकों में न केवल आपसी विलयन हुआ है बल्कि असमिया परिवेश और वैष्णव धर्म का भी विशेष प्रभाव पड़ा है। अतएव चाय श्रमिकों की भाषा से लेकर उनके साहित्य, संस्कृति और कला में स्पष्ट परिवर्तन और परिवर्द्धन दिखायी पड़ता है।